# भारतीय ज्ञान प्रणाली उद्गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

# भारतीय ज्ञान प्रणाली उद्गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

**Ph.D., D.Lit. (Sub.)**

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

**Books n Books**

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :

पुष्पा शर्मा

*Books n Books*

51/1509, आचमन, वेदविहार,

लोहाखान, अजमेर-305001

ई-मेल : bnbajmer@gmail.com

मो. 9660111549

संस्करण

प्रथम 2026

*ISBN* : 978-81-993854-1-2

मूल्य - 400/-

रचना - भारतीय ज्ञान प्रणाली-उद्गम और विकास

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

आवरण - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

मुद्रक

श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

20

# वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा


**सुर्मिला यादव**

**सहायक आचार्य ( शिक्षा विभाग )**

**हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर**


मानव सभ्यता का इतिहास केवल साधनों की खोज का इतिहास नहीं है, बल्कि आत्मबोध और जिज्ञासा की निरन्तर यात्रा भी है। जब पृथ्वी पर मानव का प्रादुर्भाव हुआ, तब वह शक्ति, गति और प्राकृतिक सुरक्षा के साधनों की दृष्टि से अन्य जीवों की तुलना में अत्यन्त सीमित था। न उसके पास तीव्र वेग था, न आकाश में विचरण करने की क्षमता, न जल में सहज तैराकी का गुण और न ही वृक्षों पर स्वच्छन्द विचरण की योग्यता। प्रकृति ने उसे न तो नुकीले नख-दन्त दिए और न ही सहज आश्रय-निर्माण की कला सौंपी। इस प्रकार मानव का जन्म एक ऐसे प्राणी के रूप में हुआ जो बाह्य रूप से दुर्बल था, परन्तु जिसके भीतर अपार सम्भावनाएँ सुप्त अवस्था में विद्यमान थीं।

इसी दुर्बलता ने मानव को चिन्तनशील बनाया। बाह्य शक्ति के अभाव में उसने अन्तर्मुखी होकर अपने अस्तित्व का अर्थ खोजने का प्रयास किया। यह आत्मचिन्तन ही भारतीय परम्परा में ज्ञान और विज्ञान का प्रथम सोपान बना। वैदिक ऋचाओं में निहित प्रेरणा मानव को यह स्मरण कराती है कि वह तुच्छ नहीं, बल्कि विराट ब्रह्माण्ड का अभिन्न अंग है। द्युलोक उसका पृष्ठ है, पृथ्वी उसका आधार है, अन्तरिक्ष उसकी चेतना है और समुद्र उसकी उत्पत्ति का प्रतीक है। इस बोध ने मानव के भीतर आत्मविश्वास और साहस का संचार किया।

भारतीय चिन्तन में मनुष्य और प्रकृति के बीच विरोध का नहीं, बल्कि तादात्म्य का सम्बन्ध स्वीकार किया गया। यही दृष्टि भारतीय वैज्ञानिक परम्परा की आधारशिला है। यहाँ विज्ञान का अर्थ केवल यांत्रिक प्रगति नहीं, बल्कि प्रकृति के नियमों को समझकर उनके साथ सामंजस्य स्थापित करना है। वैदिक संदेश मानव को यह प्रेरणा देता है कि वह जागृत दृष्टि से संसार को देखे, परिस्थितियों को समझे और संघर्ष के माध्यम से उन पर विजय प्राप्त करे।

अग्नि का प्रतीक इस परम्परा में विशेष महत्व रखता है। अग्नि को मानव की

विजय का आधार कहा गया, क्योंकि वही ऊर्जा, प्रकाश और रूपान्तरण की शक्ति है। पृथ्वी के गर्भ से अग्नि का खनन केवल भौतिक क्रिया नहीं, बल्कि ज्ञान के उद्भव का संकेत है। अग्नि के माध्यम से मानव ने भोजन पकाना, धातुओं को गलाना, औषधियाँ बनाना और विविध उपकरणों का निर्माण करना सीखा। यही से तकनीक, शिल्प और प्रयोगात्मक विज्ञान का विकास हुआ।

आदिम मानव ने एक स्वर में यह संकल्प प्रकट किया कि हम सब पृथ्वी के गर्भ से निरन्तर अग्नि का खनन करते रहेंगे और इस महान् कार्य के लिए हमारे भीतर सुमति, अर्थात् शुभ बुद्धि और सद्भाव बना रहेगा। यह विश्वास केवल एक कल्पना नहीं था, बल्कि सृष्टि के आरम्भ में ली गई वह प्रतिज्ञा थी, जिसे मानव जाति ने आज तक निभाया है। बार-बार वैदिक ऋचाओं में मनुष्य ने यह दोहराया कि वह पृथ्वी के अन्तराल से सुचिह्नित, तेजस्वी अग्नि को निकालता रहेगा, ठीक उसी प्रकार जैसे अंगिरस् ने किया था। परम्परा के अनुसार अग्नि-खनन के इस महान् कृत्य का नेतृत्व अथर्वा या अंगिरस् ने किया, और ऋचाओं की प्रेरणा पाकर मानव ने विभिन्न स्थानों पर अग्नि को प्रकट किया।

जिस क्षण अग्नि पहली बार मानव के समक्ष प्रकट हुई, वह क्षण मानव इतिहास का सबसे स्मरणीय और निर्णायक क्षण बन गया। उस समय श्रद्धा और विस्मय से मानव का मस्तक स्वतः नत हो गया और उसके कण्ठ से सहज रूप में ऋग्वेद की प्रथम ऋचा फूट पड़ी— 'अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।' यह केवल स्तुति नहीं थी, बल्कि उस शक्ति के प्रति कृतज्ञता थी, जिसने मानव को असहायता से उबारकर सृजनशीलता का मार्ग दिखाया। जिस परम प्रेरणा से अग्नि का आविष्कार हुआ, उस आदिदेव परमपुरुष का नाम भी मनुष्य ने 'अग्नि' ही रखा। यह भौतिक अग्नि, परम आत्म-अग्नि का दूत मानी गई और इसी कारण 'अग्निदूत' कहलायी। सम्पूर्ण मानवता ने 'अग्निं दूतं वृणीमहे' कहकर उसका वरण किया, उसका स्वागत और अभिनन्दन किया।

अग्नि की सहायता से मनुष्य ने अपनी परिस्थितियों पर विजय प्राप्त की। जो प्राणी शारीरिक रूप से दुर्बल था, उसने इसी अग्नि के बल पर स्वयं को सबसे उत्कृष्ट बना लिया। अग्नि ने मानव के गृह-जीवन, खान-पान, शिल्प, उद्योग और सामाजिक संरचना को पूर्णतः रूपान्तरित कर दिया। वास्तव में मानव प्रयासों का इतिहास अग्नि के निरन्तर मन्थन का इतिहास है। सभ्यता और संस्कृति का सम्पूर्ण विकास इसी अग्नि के खनन, मन्थन और दोहन से जुड़ा हुआ है। जिस दिन यह अग्नि-यज्ञ समाप्त हो जाएगा, उसी दिन पृथ्वी से मानव का अस्तित्व भी समाप्त हो

जाएगा—ऐसा भारतीय चिन्तन मानता है।

इस सृष्टि में अग्निहोत्र का एकमात्र अधिकारी मनुष्य ही है। अन्य प्राणी चाहे कितने ही बलवान, रूपवान या प्रतिभाशाली क्यों न हों, वे अग्नि-खनन के अयोग्य हैं और इस यज्ञ के अधिकारी नहीं माने गए। इस वसुन्धरा का वह प्रत्येक स्थल धन्य माना गया, जहाँ अंगिरस् ने पहली बार इस भौतिक अग्नि का साक्षात्कार किया। विज्ञान के समस्त आविष्कारों में अग्नि का आविष्कार सबसे महान् माना गया है। यह भावना दृढ़ है कि यह आविष्कार भारतभूमि में ही कहीं हुआ होगा, अथवा जहाँ भी और जिसने भी इसका प्रथम साक्षात् किया, वह हमारा प्रथम पूर्वज था और हम सब उसके उत्तराधिकारी हैं।

आज भी जब सोम यज्ञ या अग्नि-मन्थन का अनुष्ठान होता है, तब उस आदिपुरुष अथर्वा का स्मरण ऋग्वैदिक मन्त्रों के माध्यम से किया जाता है। अग्नि को देवताओं में सबसे छोटा कहा गया, और इसी कारण वह सबसे अधिक प्रिय और सबसे अधिक पूजित भी बना। उसे अतिथि माना गया और अतिथि-सत्कार की परम्परा से उसका विशेष सम्मान किया गया। मर्त्यलोक में मानव को सबसे प्रिय वस्तु घृत प्राप्त हुई और उसी से उसने अग्नि का आदर-पूजन किया। जैसे ब्रह्माण्डीय सृष्टि में सूर्य का स्थान सर्वोच्च है, वैसे ही मानव-सृष्टि में अग्नि का स्थान सर्वोपरि माना गया। इसी कारण जहाँ सूर्य को 'ज्योतियों का ज्योति' कहा गया, वहीं अग्नि को भी 'ज्योति का ज्योति' मानकर स्मरण किया गया।

अग्नि-मन्थन की प्रक्रिया का भी वैदिक मन्त्रों में सजीव वर्णन मिलता है। ऊपरी लकड़ी, दण्ड और डोरी के माध्यम से घर्षण द्वारा अग्नि उत्पन्न की जाती थी और उसे पकड़ने के लिए शुष्क घास या दर्भ का प्रयोग होता था। यह केवल एक तकनीकी विधि नहीं थी, बल्कि सृजन और प्रजनन का प्रतीकात्मक कर्म था। इस प्रकार भारतीय परम्परा में अग्नि केवल भौतिक ऊर्जा नहीं, बल्कि जीवन, चेतना, संस्कृति और विज्ञान की मूल आधारशिला के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

**अन्न एवं खाद्य :**

मानव जीवन की सबसे पहली और सबसे मूल समस्या भोजन की रही है। जब मनुष्य ने इस पृथ्वी पर अपने अस्तित्व का बोध किया, तब उसने अनुभव किया कि जीवन की निरन्तरता के लिए अन्न अनिवार्य है। इसी कारण उसने इस धरती को 'वसुन्धरा' कहा—वह भूमि जो जीवन को धारण करती है और पोषण प्रदान करती है। अपनी उदराग्नि को शान्त करने के लिए मनुष्य ने इसी वसुन्धरा से अन्न की कामना की। आज का आधुनिक मनुष्य उस ऐतिहासिक क्षण का महत्त्व ठीक से नहीं

समझ पाता, जब मानव ने शिकार और संग्रह के अस्थिर जीवन को छोड़कर कृषि का मार्ग अपनाया और जंगलों से निकलकर अन्न से भरे खेतों का स्वामी बना। यही परिवर्तन मानव सभ्यता के इतिहास की सबसे बड़ी क्रान्तियों में से एक था।

आज हमें गेहूँ, चावल, मक्का, ज्वार, जौ, चना जैसे अन्न सहज रूप से उपलब्ध हैं, पर ये सब मनुष्य की दीर्घ साधना और प्रयोगों का परिणाम हैं। प्रकृति में कहीं भी इन अन्नों के जंगल अपने-आप नहीं मिलते। प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य ने खेतों के लिए गेहूँ या धान का पहला पौधा कहाँ से पाया होगा, बीज की पहचान उसने कैसे की होगी और उसे यह विश्वास कैसे हुआ होगा कि इन छोटे-छोटे बीजों के सहारे पूरी मानवजाति का भरण-पोषण सम्भव है।

निश्चय ही कोई ऐसा दूरदर्शी और प्रयोगशील मानव रहा होगा, जिसने असंख्य असफलताओं के बाद खेती में सफलता प्राप्त की। आश्चर्य की बात यह है कि हजारों-लाखों वर्षों के अनुभव के बाद भी आज हम कोई बिल्कुल नया अन्न मानव-भोजन के रूप में विकसित नहीं कर पाए हैं। सभ्यता और विज्ञान की इतनी उन्नति के बावजूद हमारे मुख्य अन्न आज भी वही हैं, जो प्राचीन काल में थे। यह तथ्य अपने-आप में मानव इतिहास की एक गहरी सच्चाई को प्रकट करता है।

हमारे यहाँ अन्नों की सबसे प्राचीन सूची वैदिक साहित्य में मिलती है। यजुर्वेद में धान, जौ, उड़द, तिल, मूँग, खल्व, प्रियंगु, अणु, श्यामाक, नीवार, गेहूँ और मसूर का उल्लेख मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में न केवल अन्नों की विविधता थी, बल्कि दालों और तिलहनों का भी सम्यक् ज्ञान था। तिल का प्रयोग केवल तेल के लिए नहीं, बल्कि खाद्य पदार्थों के रूप में भी होता रहा है, जैसे खिचड़ी और लड्डू आदि। आज जिन अन्नों को हम आधुनिक समझते हैं, उनकी जड़ें अत्यन्त प्राचीन हैं।

गेहूँ और चावल का आविष्कार अन्नों के इतिहास में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। कुछ लोगों ने यह मानने का प्रयास किया कि गेहूँ भारत के बाहर से आया, पर यह धारणा प्रमाणों से पुष्ट नहीं होती। यह सही है कि यज्ञों में चावल, जौ, तिल और उड़द का प्रयोग अधिक हुआ, फिर भी गेहूँ का महत्त्व भारतीय जीवन में सदा बना रहा। वैदिक मंत्रों में मधु, दूध और घी के साथ गेहूँ का उल्लेख मिलता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि गेहूँ भोजन और संस्कृति दोनों में प्रतिष्ठित था। मोहनजोदड़ो की खुदाइयों से भी प्राचीन गेहूँ के अवशेष मिले हैं, जो इसकी प्राचीनता की ओर संकेत करते हैं।

यहाँ मुख्य बात गेहूँ या चावल की उत्पत्ति पर विवाद करना नहीं, बल्कि इस

तथ्य को समझना है कि कृषि योग्य अन्नों को विकसित करना मानव जाति का एक अद्वितीय आविष्कार है। अन्न, दाल और तिलहन—ये तीनों ही मानव जीवन के आधार बने और इनका उल्लेख वैदिक परम्परा में स्पष्ट रूप से मिलता है। चावल, गेहूँ, जौ, मूँग, उड़द और मसूर की परम्परा वैदिक युग से आज तक निरन्तर चली आ रही है।

अन्न का महत्त्व अग्नि के प्रयोग से और भी बढ़ गया। अन्न पहले पौधों पर पकता है, पर मनुष्य ने उसे अग्नि पर पकाने की कला भी विकसित की। इस प्रकार पकाए गए अन्न को भोजन का रूप मिला। जौ की खेती करने वाले समुदाय 'यवमन्त' कहलाए और उन्होंने जौ के माध्यम से मानव समाज को पोषण दिया। दूध, दही और मधु के संयोग से अनेक स्वादिष्ट व्यंजन बनाए गए, जिनमें सत्तू, करम्भ और परीवाप प्रमुख थे। आज का सत्तू वैदिक काल के सत्तू से बहुत भिन्न नहीं रहा होगा—यह विश्वास हमारी जीवित परम्परा पर आधारित है।

धान से लावा बनाना, भुने हुए अन्न से सत्तू तैयार करना और इसके लिए भाड़ या भट्टी जैसे साधनों का निर्माण—ये सभी मानव की तकनीकी बुद्धि के प्रमाण हैं। घी, मधु और आटे से विभिन्न पकवान बनाने की परम्परा भी अत्यन्त प्राचीन है। पूप या पुआ, बड़े और रोटियों के प्रारम्भिक रूप वैदिक काल में ही विकसित हो चुके थे। यज्ञों में प्रयुक्त पुरोडाश जैसी हवियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि अन्न-प्रसंस्करण की कला कितनी विकसित थी।

दूध, दही, घी और मधु का उल्लेख भारतीय साहित्य के हर काल में मिलता है। दूध से दही जमाना और दही से घी निकालना आज भले ही साधारण लगे, पर कभी यह भी एक महान आविष्कार रहा होगा। मनुष्य ने पहली बार दही जमाने की प्रक्रिया कैसे खोजी, जामन की विशेषता को कैसे पहचाना और मन्थन द्वारा घी अलग करने का ज्ञान कैसे प्राप्त किया—इन सबका अनुमान लगाना कठिन है। दही के मन्थन की यह विधि ही आगे चलकर आधुनिक यांत्रिक प्रणालियों की आधार बनी।

**मधु और सरघा :**

भारतीय जीवन और चिन्तन में मधु का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। चारों वेदों में मधु के विषय में अनेक ऋचाएँ प्राप्त होती हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि मधु केवल एक खाद्य पदार्थ नहीं, बल्कि जीवन को सरस, मधुर और काव्यमय बनाने वाला तत्व था। वैदिक ऋषियों की दृष्टि में मधु समस्त सृष्टि में व्याप्त एक ऐसी शक्ति थी, जो वायु, नदियों, औषधियों, पृथ्वी और आकाश—सबको मधुरता से भर देती है। 'मधुवाता ऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः' जैसे मंत्र यह दर्शाते हैं कि ऋषि प्रकृति के प्रत्येक अंग में मधु का अनुभव करते थे। उनके लिए रात्रि, उषा,

पृथ्वी और द्युलोक—सब मधुमय थे।

वैदिक साहित्य में मधु का प्रयोग केवल शहद के अर्थ में नहीं हुआ है। कोई भी मीठा, प्रिय और स्वादिष्ट पदार्थ मधु कहलाने लगा। यही कारण है कि आगे चलकर सोम, शर्करा और गन्ने से प्राप्त रस भी मधु की संज्ञा से अभिहित हुए। मधु धीरे-धीरे एक प्रतीक बन गया—माधुर्य, तृप्ति और आनन्द का प्रतीक। अलंकारिक रूप में तो मधु का प्रयोग और भी व्यापक हुआ। यहाँ तक कहा गया कि समाज के सात मधु हैं—ब्राह्मण, राजा, धेनु, बैल, चावल, जौ और मधु स्वयं। इससे यह स्पष्ट होता है कि मधु केवल पदार्थ नहीं, बल्कि जीवन-मूल्यों से भी जुड़ा हुआ था।

मधु के उत्पादन में मधुमक्खियों की भूमिका को भी वैदिक ऋषियों ने भली-भाँति पहचाना। मधु का संचय करने वाली मधुमक्खियों का वैदिक नाम 'सरघा' था। सरघा द्वारा निर्मित पदार्थ 'सारघ' कहलाया, जो आगे चलकर मधु का ही एक रूप बन गया। ऋग्वेद के मंत्रों में गायों के दूध को सरघा द्वारा लाए गए मधु से संयुक्त बताया गया है। इससे यह संकेत मिलता है कि वैदिक काल में दूध और मधु के मिश्रण का प्रयोग प्रचलित था। कहीं मधु को सोम के साथ मिलाकर पान करने का भी उल्लेख मिलता है, जिससे यह ज्ञात होता है कि मधु केवल भोजन नहीं, बल्कि अनुष्ठानों और यज्ञीय परम्पराओं से भी जुड़ा था।

अथर्ववेद में मधुमक्खी के लिए 'सरघा' के अतिरिक्त अन्य शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। एक स्थान पर 'मक्षा' शब्द आया है, जहाँ यह कहा गया है कि जैसे मक्खियाँ मधु को छत्ते में भरती हैं। यहीं यह भी स्पष्ट हो जाता है कि साधारण मक्खी और मधुमक्खी में भेद किया गया था। अन्य स्थलों पर साधारण मक्खियों के लिए 'मक्षिका' शब्द का प्रयोग मिलता है, जबकि मधु बनाने वाली मक्खियों के लिए विशेष शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इसी क्रम में 'मधुकृत्' शब्द भी आता है, जिसका अर्थ है—मधु बनाने वाला। 'मधौधि' शब्द का प्रयोग मधुकोष, अर्थात् छत्ते के लिए हुआ है। इससे यह प्रमाणित होता है कि वैदिक काल में मधुमक्खियों के जीवन, उनके कार्य और मधु-संचय की प्रक्रिया का सूक्ष्म ज्ञान उपलब्ध था।

**पात्र, भाण्ड और उपकरण :**

अग्नि की खोज ने केवल मानव को ऊष्मा और प्रकाश ही नहीं दिया, बल्कि भोजन बनाने की कला को भी जन्म दिया। जब भोजन पकने लगा, तब उसे तैयार करने, सँभालकर रखने और परोसने के लिए पात्रों, भाण्डों और उपकरणों की आवश्यकता स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हुई। इसी आवश्यकता से मानव के प्रारम्भिक घरेलू बर्तन और औज़ार विकसित हुए। भोजन से जुड़ी ये वस्तुएँ आगे चलकर यज्ञीय

जीवन का भी अभिन्न अंग बन गईं, क्योंकि यज्ञ उस समय के गृहस्थ जीवन का केन्द्र और प्रतीक थे। यज्ञ को यदि एक प्रतीकात्मक कर्म कहा जाए, तो यह भी कहा जा सकता है कि मानव ने इसी प्रतीकात्मक कर्म के माध्यम से अपने प्रारम्भिक विज्ञान की नींव रखी। यज्ञ को जीवन का आधार मानते हुए यह विश्वास व्यक्त किया गया कि आयु, दृष्टि और जीवन-शक्ति यज्ञ से ही पूर्ण होती है। इसी भावना के कारण मनुष्य ने देवत्व और अमरत्व की आकांक्षा की। यज्ञों के निरन्तर अभ्यास और आवश्यकता के कारण ही गणित, ज्योतिष, रसायन, पशुशास्त्र और वनस्पति-शास्त्र जैसे विषयों का विकास हुआ, और साथ ही अध्यात्म का भी विस्तार हुआ।

यज्ञ से सम्बन्धित पात्रों और भाण्डों का उल्लेख यजुर्वेद में स्पष्ट रूप से मिलता है। वहाँ स्त्रुच, चमस, वायव्य, द्रोणकलश, ग्रावाण और अधिषवण जैसे उपकरणों का वर्णन है। स्त्रुच और चमस आज के प्याले और चमचे के समान थे। द्रोणकलश का प्रयोग जल या अन्य द्रव पदार्थों के लिए होता था, जबकि ग्रावाण और अधिषवण बट्टे और सिल के समान थे। अन्य मंत्रों में टोकरी, घड़ा, स्थाली जैसे पात्रों का भी उल्लेख है। स्थाली उस पात्र को कहा गया जिसमें भोजन पकाया जाता था—वह मिट्टी की हाँडी भी हो सकती थी, धातु की पतीली भी और कड़ाही जैसी आकृति भी। आज के 'थाल' और 'थाली' शब्द सम्भवत: इसी परम्परा से विकसित हुए हैं। द्रोण शब्द कभी प्याले के अर्थ में आता है, तो कभी बालटी के अर्थ में। आज भी पत्तों से बने 'दोने' उसी परम्परा की स्मृति हैं।

ऋग्वेद में सत्तू के साथ उसे छानने की चलनी का उल्लेख मिलता है, जिसे 'तितउना' कहा गया है। निरुक्त के अनुसार यह छिद्रों वाला उपकरण था, जिसके छोटे-छोटे छेदों से भूसी अलग की जाती थी। अथर्ववेद में मुसल और उलूखल, अर्थात् खल-मूसल, का वर्णन पकते हुए अन्न के सन्दर्भ में आता है। इसके साथ ही शूर्प या सूप का उल्लेख भी मिलता है, जिससे भूसी और दानों को अलग किया जाता था। जो व्यक्ति यह कार्य करता था, उसे शूर्पग्राही कहा जाता था। पकते हुए अन्न को हिलाने के लिए आयवन और परोसने के लिए दर्वि, अर्थात् गहरे चमचे का भी वर्णन है। ऋग्वेद में सोम से सम्बन्धित उलूखल पर पूरा सूक्त मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि ये उपकरण केवल घरेलू नहीं, बल्कि धार्मिक और अनुष्ठानिक महत्त्व भी रखते थे।

घी से भरे दर्वि का उल्लेख अन्य मंत्रों में मिलता है और अथर्ववेद के कुन्ताप सूक्त में भी उलूखल और शूर्प का संकेत है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में घरेलू जीवन के लिए आवश्यक लगभग सभी बर्तनों और उपकरणों का ज्ञान

था। ये पात्र मिट्टी, लकड़ी और धातुओं से बनाए जाते थे। कलश, कुम्भ और कुम्भी जैसे बर्तनों के आविष्कार से कुम्भकार की सम्पूर्ण परम्परा का विकास हुआ। उलूखल, मुसल, शूर्प और तितउना जैसे उपकरण ऐसे थे, जिनकी अवधारणा पर आगे चलकर आधुनिक यंत्रों का विकास सम्भव हुआ।

आज का मनुष्य मथानी, खल-मूसल या सूप जैसे साधारण उपकरणों के महत्त्व को शायद न समझ पाए, पर जिस समय मानव ने पहली बार इनका प्रयोग सीखा होगा, वह समय एक नई संस्कृति और तकनीकी चेतना का प्रारम्भ रहा होगा। लीवर, पेंच और गड़ारी जैसे सिद्धान्तों की नींव इन्हीं सरल उपकरणों में निहित थी। दही से घी निकालने की मथानी और रस्सी से चलने वाली प्रणाली को प्रारम्भिक गड़ारी माना जा सकता है। कुएँ से पानी निकालने के लिए रस्सी का प्रयोग अवश्य रहा होगा, यद्यपि गड़ारी के प्रयोग का स्पष्ट संकेत वैदिक साहित्य में नहीं मिलता। कुएँ का उल्लेख विभिन्न रूपों में मिलता है और निरुक्त में इसकी रोचक व्युत्पत्ति दी गई है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि जल-स्रोत मानव जीवन में कितने महत्त्वपूर्ण थे।

ऋग्वेद के एक मंत्र में 'उपलप्रक्षिणी' शब्द आता है, जिसका अर्थ निरुक्त में सत्तू बनाने वाली स्त्री बताया गया है। उपल अर्थात् बालू या दहकते उपले, और प्रक्षिणी अर्थात् फेंकने या भूनने वाली। इसका अर्थ हुआ—वह स्त्री जो गरम बालू या उपलों पर अन्न को भूनकर सत्तू बनाती है। आज भी 'उपला' शब्द जलते हुए कंडों के लिए प्रयोग होता है। इस प्रकार वैदिक साहित्य में 'भाड़' और भूनने की विधि का भी संकेत मिलता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अग्नि की खोज और भोजन-निर्माण की प्रक्रिया से मानव जीवन में पात्रों, भाण्डों और उपकरणों का विकास हुआ। भोजन पकाने, संग्रह करने और परोसने की आवश्यकताओं से बने ये साधन आगे चलकर यज्ञ-कृत्यों और गृहस्थ जीवन के केन्द्र बने। यज्ञ के माध्यम से प्रतीकात्मक सोच विकसित हुई, जिसने गणित, ज्योतिष, रसायन, वनस्पति और पशुशास्त्र जैसे विज्ञानों की नींव रखी। वैदिक साहित्य में वर्णित स्थाली, कुम्भ, कलश, उलूखल, मुसल, शूर्प और मथानी जैसे उपकरण यह दिखाते हैं कि उस युग में तकनीकी और वैज्ञानिक समझ विकसित हो चुकी थी। इन्हीं साधनों से लीवर, गड़ारी और अन्य यांत्रिक अवधारणाएँ जन्मीं, जिनसे आगे चलकर यन्त्रयुग का विकास सम्भव हुआ।

☆☆☆